दक्षिणी राजस्थान में सागड़ी प्रथा – बदलते संदर्भ में

*डॉ. चन्द्रप्रभा पारीक

आनुवांशिक बोझ कर्ज का, जिनको मिला विरासत में।

कर्ज में जन्मे, जिये कर्ज में, मरे कर्ज की सांसत में।।[1]

इतिहास में ऐसे दुर्बल तथा निःसहायों के दमन के अनेक उदाहरण मिलते है जिनमें एक प्रथा थी– बन्धक श्रम। जिसके अन्तर्गत निर्धन वर्ग की गरीबी, कर्जदारी एवं लाचारी का फायदा उठाकर उनके श्रम का शोषण किया जाता था। इन बंधुआ श्रमिकों को राजस्थान में सागड़ी, हाली[2] (सीरी) आदि नामो से जाना जाता था।

मानव श्रम के शोषण का पोषण करने वाली सागड़ी प्रथा राजस्थान के श्रम के शोषण का पर्याय है, जो बन्धक श्रम उन्मूलन अधिनियम के 1976 की धारा–2 की विभिन्न श्रेणियों में शामिल किया गया है।[3] राजस्थान में सागड़ी, (हाली) व्यवस्था बांसवाड़ा और डूंगरपुर रियासतों के अतिरिक्त अन्य विभिन्न रियासतों में भी थी।[4]

19वीं शताब्दी के द्वितीय दशक में राजपूत राज्यों के साथ ब्रिटिश संधियों के परिणामस्वरूप राजनीतिक व्यवस्था में उपनिवेशवादी दमन व शोषण की नई प्रक्रिया आरम्भ हुई राज्य के शासकों जागीरदारों और ब्रिटिश पोलिटिकल एजेन्टो द्वारा भीलों से भू–राजस्व के अतिरिक्त असंख्य लाग–बाग वसूल की जाती थी।

माणिक्यलाल वर्मा के अनुसार राज्य के स्वामी तथा उनके सहयोगी यहाँ के आदिवासियों का इतना बुरी तरह शोषण करते कि बेगार का स्वरूप इतना भंयकर और क्रुर था कि खेत में हल चलाते किसान को भी को मामूली पुलिस भी अपने सामान ढ़ोने के लिए बुला ले जाता था। भीलों की निरक्षरता का लाभ उठाकर उनकी जमीनों एवं पशुओं को राज्य के अधिकारियों के साथ जागीरदारों ने अपने कब्जे म`ले लिया। झाडोल ठिकाने की ओर से यहाँ के राज्य कर्मचारी फलासिया मे गए, उन्होंने भीलो से बेगार लेना चाहा और उनके घरो मे घुसकर घी के पीपे तथा बकरे जबरदस्ती उठा लिये गये। जिसकी शिकायत की गई। झाडोल ठिकाने के रावजी के खिलाफ पहले भी कई जुर्म साबित हो चुके थे।[5]

इस प्रकार देशी रियासतों के ब्रिटिश परस्त शासको ने जनजातीय क्षेत्र के लोगों को खुले आकाश के नीचे भूखे, प्यासे, नंगे होकर गुजर बसर करने व रोटी की खातिर सागड़ी बनने पर मजबूर कर दिया गया । रियासती शासन तो इस टोह में रहता कि वह कब गरीब और शोषित को अपने हल में जोते तथा बेगार मे कब उसके सिर पर बोझ लादे। बेगार प्रथा के खुले प्रहार से भील ऋणग्रस्तता के चक्र में इतनी बुरी तरह फंसने लगे कि कभी–कभी लगान चुकाने के लिए अपने को बेचने को भी मजबूर हो जाते।

श्यामलदास ने वीर विनोद में मेवाड़ के कुम्भलगढ़ जिले के विषय में जो लिखा है उससे पता चलता है यहॉ हर गाँव में उन्हें बैठ (बेगार) के बदले थोड़ी जमीन भी दी जाती थी। ये भील लोग जागीरदारों, गाँव के किसानों व

राज्य अधिकारियों के कहे अनुसार किसी भी प्रकार का शरीरिक श्रम वाला कार्य करते थे व इसके बदले में उन्हें भोजन दिया जाता था या प्रतिदिन आधा सेर के हिसाब से जौ या मक्की भत्ते के तौर पर दे दी जाती थी।

सन् 1931 में सेन्ट्रल बैंक जॉच समिति की रिपोर्ट में उन्ही दो तथ्यों को दोहराया। पहली बात यह कि ब्रिटिश शासनकाल के प्रारम्भिक दिनों में किसानों को इसलिए दमन का शिकार होना पड़ा क्योंकि वे कर का भुगतान नही कर सके थे दूसरे बाद में उन्होने अपनी जमीन बेच दी और बंधुआ श्रमिक (राजस्थान में सागड़ी) बन गए।[6]

दक्षिणी राजस्थान में हालियों को 'भागिया' भी कहा जाता था जो हिरवी (भूस्वामी) के यहाँ काम करते थे। डूंगरपुर के सागड़ी ने केवल खेतिहर जातियों के स्वामित्व मे आते थे बल्कि दस्तकारी जातियों के स्वामित्व मे भी आते थे।[7]

सागड़ी रहते समय मालिक व सागड़ी के मध्य समझौता होता था, उस समझौते में मालिक व सागड़ी के मध्य सम्बन्धों का स्पष्ट उल्लेख होता था। उदाहरण के लिए सिमलवाड़ा निवास बैसात भील, उसके पुत्र भीखा एवं पत्नी भूरी ने ठिकाना सिमलवाड़ा से 200 रू. धमाल को ऋण राशि लौटाने हेतु प्राप्त किये। उसके बदले में रूपयों के ब्याज के एवज में सागड़ी बने।[8]

यदि कोई सागड़ी इस बीच मृत्यु को प्राप्त हो जाता तो उसका पुत्र अथवा उत्तराधिकारी को सागड़ी रहना होता था।

दक्षिणी राजस्थान में मालिक व सेवक के इकरारनामें दो प्रकार के थे पहला ऋण जो बिना ब्याज के दिया था, उसके लिये ऋणी या उसके परिवार को कोई सदस्य देनदार के यहाँ नियुक्त किया जाता था। जिसे उस अवधि के लिए कोई पारिश्रमिक नही दिया जाता था। दूसरा दिये गए ऋण के ब्याज की एवज में कार्य करना होता था। पहला प्रकार का करार भीलों में हाली के रूप में तथा दूसरी प्रकार का सागड़ी के रूप में जाना जाता था।[9]

गरीबी एवं मजबूरी का नाजायज फायदा उठाकर महाजन व व्यापारी आदिवासियों के साथ लेनदेन करते थे। जागीरदारों ने आदिवासियों को दासता एवं कठोरता से नियंत्रण मे रखा, तो महाजनों ने उनको आर्थिक विनिमय एवं ऋण व्यवस्था के द्वारा अपने प्रभाव में रखा। अकाल के समय भी कृषकों से कर एवं लागते बेरहमी से वसूल की जाती रही, परिणामस्वरूप कृषि भूमि के असली मालिक कृषि श्रमिक बन कर रह गए।

19 वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में डूंगरपुर में सागड़ी प्रथा के प्रचलन का प्रमाण मिलता है। ये सागड़ी वे भील थे, जिन्होने स्वयं को कुछ धन के बदले इन राजपूत व उनके परिवारों को बेच दिया था, क्योंकि वे इस धन को वापस देने की स्थिति मे नही थे।[10]

आदिवासियों के इस दमन व उत्पीड़न के विरूद्ध धार्मिक व सामाजिक आन्दोलन भी चलाए गए। इस क्षेत्र में संत मावजी, सूरमलदास आदि अग्रणी रहे, वही गोविन्द गिरी ने 'सम्प सभा' के माध्यम से पिछड़ी जातियों को संगठित कर उनकी आर्थिक स्थिति सुधारने, बेगार नही देने तथा अन्याय का मुकाबला करने जैसे नियम बनाये। मोतीलाल तेजावत के 'एकी' आन्दोलन ने भी बिजौलिया आन्दोलन की तरह बैठ बेगार व सामन्ती जुल्मों का विरोध किया। भीलों में राजनीतिक चेतना जागृत करने और सामाजिक व आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए वनवासी चेतना जागृत करने और सामाजिक व आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए वनवासी सेवा संघ की स्थापना की गई। उस क्षेत्र में ठक्कर बापा, भोगीलाल पाण्ड्या, हरिदेव जोशी, गौरीशंकर उपाध्याय, भूरेलाल बयां, जनार्दन राय आदि नेताओं ने भीलों के उत्थान के प्रयास किये। माणिक्यलाल वर्मा, विजयसिंह पथिक, भॅवरलाल स्वर्णकार, गणेशलाल उस्ताद, जयनारायण व्यास, नानूराम व्यास आदि ने अपने गीतों एवं साहित्य के माध्यम से बेगारी व सागड़ी का दयनीय वर्णन कर जनमानस को उद्धेलित किया। 'भावना' नामक गीत में भॅवरलाल स्वर्णकार लिखते है।

कमां–कमा यूं ही रह जाता, भूखा मरता चणा चबाता,

घास बेचकर लाग चुकता, ई पर भी पड़ता जूता भारी जी।[11]

इसी प्रकार सूदखोरी व्यवस्था पर चोटकर हाली या सागड़ी की दशा का वर्णन करते हुए गणेशलाल उस्ताद ने 'साथियां जागण रौ दिन आयौ' गीत मे लिखा है।

सेठां मे जन्तु जनमिया, हाथ–हाथ नै खा जावै,

मोटा मगर कुटुम्ब ने खावै, छोटोड़ा रूलता जावै,

भूखां मर हाली कमतरिया, सगलौ भार उठायौ,

सेठा पेट बधायो, जागण रौ दिन आयो।[12]

इसमें साहुकारों द्वारा सागड़ियों के शोषण की बात कही गई एवं जनसाधरण को सामाजिक, राजनीतिक चेतना का संदेश दिया।

कानून क्षेत्र में भी 'कवायद मुताल्लिक हालियान' 1936 व विभिन्न रियासतों में बेगार निषेध अधिनियम बनाए गए, किन्तु ये प्रभावी साबित नही हो सके। देश की आजादी के बाद राजस्थान कृषि ऋण राहत अधिनियम, 1957 राजस्थान साहूकार अधिनियम, 1963 राजस्थान सागड़ी उन्मूलन अधिनियम, 1961 बंधित श्रम पद्धति अधिनियम, 1976 लाकर इस समस्या पर अंकुश लगाया गया।

यद्धपि इस प्रथा के उन्मूलन, में कानून ने निःसंदेह सहयोग किया लेकिन वर्तमान समय में भी सागड़ी प्रथा किसी न किसी रूप में अस्तित्व मे है। यह दुखद पहलू है। आज भी प्रभावशाली व्यक्तियों के घरो, खेतों, फैक्ट्रियों, खानों, ईंटभट्टों में कार्यरत गरीब व शोषित श्रमिक विभिन्न नामों व रूपों में समाज में अस्तित्व बनाये हुए है। सर्वोच्य न्यायालय के आदेशानुसार ठेका श्रमिक, कम पारिश्रमिक पाने वाले, अन्तर–राज्यीय प्रवासी श्रमिकों के मामलो को भी बंधुआ श्रमिकों के अन्तर्गत सम्मिलित किया गया। बंधुआ श्रमिक पहले अधिकांशतः कृषि क्षेत्र में पाये जाते थे। लेकिन पिछले कुछ वर्षो में नये क्षेत्र भ उभरकर सामने आये, जैसे – हथकरघा उद्योग, कालीन बुनाई, ईंट भट्टा उद्योग, स्टोन क्रेशर, खनन उद्योग, घरेलू क्षेत्र इत्यादि।

उदाहरणार्थ– पानिया गाँव में 1961 ई. में एक भील महिला के बारे मे जानकारी मिली जो महज 25 रू. कर्ज के कारण 20 वर्ष से गुलामी कर रही थी।[13] चित्तौड़ गढ़ जिले की भदेसर तहसील के हट्टीपुरा गाँव का मगना भी पारनिया गाँव के नन्दलाल जाट के यहाँ 10 वर्ष की उम्र से सागड़ी के रूप में कार्य कर रहा था, उसे दिहाड़ी के रूप में रोटी, दाल अथवा सब्जी दी जाती थी।[14]

वर्ष 2000 में झुंझुनु जिले की खेतड़ी तहसील के गाँव बीलवा निवास 72 वर्षीय मालीराम पिछले 35 वर्षो से मात्र 10 रू. प्रतिमाह में कार्य कर रहा था। उसने बताया कि पहले सेठ भगवानदास बेगार लेता था और बाद मे उसके परिजन द्वारा उसे धमकाया गया कि यदि वह काम छोड़ देगा तो चोरी के झूठे इल्जाम मे जेल भिजवा दिया जायेगा। इस प्रकार मानसिक यातनाए देकर बेगार ली जाती रही।[15]

इस प्रकार सागड़ी प्रथा नए रूप में इतिहास के साथ, वर्तमान में भी हमारी सामाजिक व्यवस्था में सम्मिलित हो गई। चाहे वह ब्रिटिश शासन के प्रभाव के कारण हुई हो या स्वतन्त्र ग्रामीण अर्थव्यवस्था के छिन–भिन्न होने की स्थिति में हुई। यद्यपि राज्य सरकार व बहुत से स्वयंसेवी संगठनों ने अच्छे प्रयास किए किन्तु आज भी बंधक श्रम समाज में

व्याप्त है। इस बात से इंकार नही किया जा सकता अतः आवश्यकता इस बात की है कि इस समस्या पर सामूहिक चिन्तर का वातावरण तैयार किया जाए ताकि समाज का यह पिछड़ा व उपेक्षित वर्ग भी स्वतन्त्रता का साहस जुटा सके।

***सह आचार्य**
इतिहास विभाग
श्री आर.के.पाटनी राजकीय महाविद्यालय किशनगढ़
अजमेर (राज.)

संदर्भ सूची

1. अजय कुमार सिंह, पालने से कब्र तक, पृ .5
2. सरला–भारला, बॉन्डेड लेबर इन इंडिया, पृ. 25
3. बंधित श्रम पद्धति (उत्सादन) अधिनियम, 1976
4. डूंगरपुर अभिलेख क्र.सं. 944, बाता 146, 1915
5. नवजीवन, 4 दिसम्बर 1994 ई.
6. महाश्वेता देवी व निर्मल घोष, भारत में बंधुआ मजदूर, पृ. 72
7. एम.पी.जैन, पीजेन्ट लैण्डलोर्ड रिलेशन्स, पृ. 14
8. करूणा जोशी, डूंगरपुर राज्य की राजस्व व्यवस्था (1818–1947), पृ. 26
9. एन.एन. व्यास, बॉण्डेज एण्ड एक्सप्लोईटेशन इन ट्राइबल इण्डिया, पृ. 94
10. नीरजा भट्ट, राजस्थान का भील समाज, पृ. 209
11. प्रकाश नाटाणी, राजस्थान का स्वाधीनता आन्दोलन, पृ. 132
12. नारायण सिंह भाटी (मूं.स.) हुकुमसिंह भाटी (सं.) स्वतन्त्रता आन्दोलन की राजस्थान की प्रेरक रचनाएं, पृ. 134
13. महाश्वेता देवी व निर्मल घोष, भारत में बंधुआ मजदूर, पृ. 116
14. भॅवर मेघवंशी, भीलों की पदचाप, पृ. 24
15. दैनिक नवज्योति, जयपुर, 8 जून, 2000